श्रीचक्र : विश्वसृष्टि का रहस्य

विश्व-सृष्टि के सम्बन्ध में प्राचीन और नवीन शोध-साहित्य में नाना प्रकार के विवरण देखने में आते हैं । प्रत्येक वर्णन किसी सिद्धान्त विशेष के अनुसार होता है। प्रत्येक सिद्धान्त विशिष्ट दृष्टिकोण-मय सत्य के ऊपर प्रतिष्ठित होता है। यहाँ शाक्त-सम्प्रदाय-रूपी विशिष्ट दृष्टिकोण से सृष्टि तत्व के विषय में संक्षेप में कहा जा रहा है ।

शाक्त-मत वे अनुसार विश्व-सृष्टि और व्यक्तिगत देह-सृष्टि मूलतः एक ही व्यापार है । शाक्त-दर्शन के अनुसार 'श्री-चक्र' के उदय से जगत् की सृष्टि एवं आत्मा का देह युक्त होकर प्रकाशित होना एक ही बात है । शाक्त-मत से

समग्र जगत् के मूल में जो अखण्ड सत्ता विद्यमान है, वह एकाधार से विश्व का उपादान एवं निमित्त स्वरूप है । उसका ह्रास या वृद्धि नहीं है । वह अनन्त, अनादि, स्वप्रकाश और चिदानन्दरूप है । इस स्थिति को शाक्त शिव और शक्ति की अद्वैतावस्था कहते हैं ।

शिव-रूप में उक्त अखण्ड सत्ता उदासीन, निष्क्रिय और निरपेक्ष दृष्टा है । शक्ति-रूप में वही भावी विश्व का उपादान है । शिव और शक्ति अभिन्न होते हुए भी शिव तटस्थ और शक्ति सङ्कोच एवं प्रसार-शील है। प्रकृत (वास्तविक) शिव, जिन्हें किसी भी प्रकार शक्ति नहीं कहा जा सकता, उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार की व्याख्या या वर्णन सम्भव नहीं है - '**शक्त्या विना परे शिवे नाम धाम न विद्यते।**'

इस प्रकार लगत् के मूल में शक्ति के ही दो विरुद्ध रूपों (शिव-शक्ति) की क्रीड़ा विद्यमान है । यही दो शक्तियाँ किसी स्थिति में सम-रस, अद्वय-भाव से अविभक्त रूप से विद्यमान हैं। किसी स्थिति में ये दोनों विषय-भाव से परस्पर

एक दूसरे के ऊपर क्रियाशील रहती हैं ।

तान्त्रिक - साहित्य के सृष्टि-विज्ञान के वर्णन में शक्तियों के ये दो रूप 'अग्नि' एवं 'सोम' रूप से वर्णित हैं। अग्नि दुःख-प्रद, सोम आनन्द-प्रद है । अग्नि मृत्यु रूप, कालं रूप | सोम अमृत -रूप | अग्नि अविभक्त वस्तु को विभक्त कर प्रकाश बनाती है । सोम विभक्त वस्तु को अविभक्त - रूप में संहत करता है। अग्नि प्रकाश स्वरूप, सोम विमर्श रूप । अग्नि और सोम जब साम्य रूप में अवस्थित रहते हैं, तब अग्नि की कोई क्रिया प्रकाशमान नहीं हो सकती । सृष्टि और संहार कोई भी क्रिया नहीं होती। यह नित्य स्थिति की अवस्था है। यही नित्य अवस्था - अग्नि और सोम का नित्य सम-रस, अद्वय स्थिति - शाक्तसाहित्य में **'काम'** अथवा **'सविता'** नाम से प्रसिद्ध है।

'अग्नि' के स्पर्श से **'सोम'** विगलित होकर क्षरित होता है । इस अवस्था में **'अग्नि'** का स्पर्श रहने पर भी **'सोम'** की ही प्रधानता रहती है । इसी **'क्षरण'** से सृष्टि का उदय होता है । शाक्त-मत से **'हार्द्ध'** कला नाम की चित्-

कला का उदय होता है । **'अग्नि'** के प्रभाव से सोम वाष्प-रूप में परिणत हो पिघल कर अव्यक्त हो जाता है। यही संहार का द्योतक है। इस अवस्था में 'सोम' के रहने पर भी 'अग्नि' की प्रधानता से संहार होता है ।

शाक्त-मत से चित्-कला के उदित होने पर सृष्टि-व्यापार में जितने भी स्तर लक्षित होते हैं, उन सबका वर्णन **'श्री-चक्र' के विन्दु → त्रिकोण → अष्ट-कोण → अन्तर्दश - कोण→ वाह्य दश-कोण → चतुर्दश कोण→अष्ट-दल →षोडश-दल → तीन वृत्त → चतुरस्र** द्वारा हो जाता है । चतुरस्र सृष्टि की बाह्य प्राचीर है। यहाँ सृष्टि का अवसान होता है । क्षुद्र सृष्टि और विराट् सृष्टि दोनों का नियम एक ही है। जिस प्रकार की भी सृष्टि हो, उसमें बाहर चतुरस्र और भीतर बिन्दु अवश्य ही रहेगा ।

दूसरे शब्दों में सृष्टि और संहार-चक्र के मध्य एवं संहार और सृष्टि-नक्र के मध्य में आभास या सापेक्ष रूप में विन्दु का सन्धान मिलता है। अतएव यह कहना असङ्गत नहीं है कि सृष्टि, स्थिति और संहार निरन्तर चलते रहते हैं,

अथवा भीतर प्रवेश करने पर देखा जाता है कि जहाँ सृष्टि का मूल है, वहीं संहार का भी अवसान है । जो एक हैं, वे अपने स्वातन्त्र्य के वल से अपने को नाना रूप में प्रकाशित करते हैं।

'एक' का अवलम्बन कर 'नाना' उद्भूत होते हैं। 'नाना' (अनेक) जब निज के मूल (एक स्वरूप) में प्रत्यावर्तन करते हैं, तब वास्तविक संहार घटित होता है और सृष्टि के आवर्त्त में लौटकर आना नहीं होता । यही काल की क्रीड़ा है । **'श्रीचक्र'** का यह सन्देश सदैव स्मरण रखना चाहिये कि **सृष्टि के व्यापार के पूर्व विन्दु-रूपी चित्-शक्ति की क्रीड़ा अवस्थित है । चित्-शक्ति निज-स्वरूप अर्थात् आत्मा को भित्ति बनाकर उसी के ऊपर विश्व - रचना करती है ।**

सृष्टि-मुख में उक्त विन्दु विधा विभक्त होकर विन्दु-त्रय के रूप में आविर्भूत होता है। समष्टि में जहाँ एक विन्दु है, व्यष्टि में वहाँ तीन विन्दु होते हैं । प्रकाशांश और विमर्शांश दोनों मूल-सृष्टि के मूल हैं। प्रकाशांश को 'अम्बिका' एवं

विमर्श को 'शान्ता' संज्ञा दी गई है । अम्बिका -वामा, ज्येष्ठा और रौद्री - इन तीन शक्ति-रूपों में अभिव्यक्त होती है । शान्ता - इच्छा, ज्ञान और क्रिया-रूपों में अभिव्यक्त होती है । अम्बिका और शान्ता जहाँ सामरस्य-भावापन्न हैं, उसी का नाम मूल-विन्दु या समष्टि विन्दु है । इसी प्रकार व्यष्टि विन्दु को भो समझना चाहिये । इन तीन विन्दुओं में पहला वामा और इच्छा का सामरस्य-रूप, दूसरा ज्येष्ठा और ज्ञान का, तीसरा रौद्री और क्रिया का सामरस्य -रूप है । ये तीनों विन्दु ही 'मूल- त्रिकोण' के तीन विन्दु हैं | जिसे 'मूल विन्दु' कहा गया है, वह इसी मूल त्रिकोण का मध्य विन्दु है। ।

अम्बिका के साथ शान्ता का सामरस्य होने से 'परा - वाक्' (मूल-विन्दु : परा सत्ता) की अभिव्यक्ति होती है । वामा और इच्छा का सामरस्य होने से 'पश्यन्ती वाक्' की अभिव्यक्ति होती है । ज्येष्ठा और ज्ञान का सामरस्य होने से 'मध्यमा वाक्' की अभिव्यक्ति होती है और रौद्री एवं क्रिया का सामरस्य होने से 'वैखरी' की अभिव्यक्ति होती है।

मूल- त्रिकोण का मध्य-विन्दु 'परा-मातृका' और तीन दिशाओं के तोन विन्दु पश्यन्तीमध्यमा वैखरी - मातृका' हैं । त्रिकोण को वायीं रेखा 'पश्यन्तो वाक्' का प्रसार है । ऊर्ध्व रेखा या सम्मुख को सरल रेखा 'मध्यमा वाक्' का प्रसार है और दक्षिण को प्रत्यावर्तन-मुखी 'वैखरी वाक्' का । यही योनि-स्वरूपा विश्व-मातृका का संक्षिप्त दिग्दर्शन है। शब्द ब्रह्म के ज्ञाता इसी की भावना करते हैं । शाक्त-भावना के अनुसार सृष्टि का नियम है कि ज्ञान से शब्द का उद्भव होकर, शब्द से अर्थ का आविर्भाव होता है। ज्ञान में जो आत्मगत रूप में होता है, शब्द में वही आत्मा से अनात्मा रूप में विच्छुरित होता है । इसके बाद शब्द से अर्थ-स्तर में उपनीत होने पर सृष्टि की क्रिया सम्पन्न होती है। रहस्य-विद् भर्तृहरि कहते हैं कि-'तत्व से ही अर्थ का आविर्भाव होता है।' अनादि अनन्त शब्द ही मूल तत्व है । वही अक्षर-स्वरूप अर्थ रूप में विवर्तित होता है ।

शाक्त-दर्शन में शब्द से अर्थ की स्कृति स्पष्टतः स्वीकार की गई है । साथ ही यह भी

अङ्गीकृत हुआ है कि शब्द की स्फूर्ति शब्दातीत चैतन्य से होती है । **शब्द अर्थ-रूप में परिणत होता है। अर्थ शब्द का बहिर्विलास है।**

दूसरे शब्दों में और अधिक स्पष्टीकरण के लिये हम कह सकते हैं कि - 'मूल में महा शक्ति परम शिव-परम अव्यक्त के साथ एक है । यह **'निष्पन्द-स्थिति'** है । इसमें स्वातन्त्र्य-योग से **'स्पन्दन'** हो उठता है । यह स्वातन्त्र्य-योग की स्थिति, परम सत्ता के सहित अभिन्न होने के कारण, 'नित्य-योगस्थिति' है अर्थात् निष्पन्द - स्थिति में **'नित्य-योग'** का स्पन्दन निरन्तर होता रहता है । बुद्धि इसकी धारणा नहीं कर सकती । आत्म - स्वानुभव के बीच इसे परिस्फुट रूप से धारण किया जा सकता है क्योंकि प्रमाण के गोचर न होने पर भी यह 'नित्य प्रकाश' है ।

शुद्ध स्पन्दन के साथ ही 'एक' के मध्य, स्वातन्त्र्य-योग के छिन्न न होते हुए, वैचित्य का आभास होता है । शिव शक्ति के उन्मुख हुए प्रतीत होते हैं एवं शक्ति बहिर्मुख | यह शक्ति

के गर्भ में ही प्रकाशित होता है। बहिर्मुख शक्ति मूल-शक्ति का गर्भाधान है। गर्भ से पृथक् होकर बहिर्मुख शक्ति सृष्टि रूप ग्रहण करती है ।

- में इस प्रकार **'विन्दु'**-रूपी परा-वाक् के गर्भ में है - तत्व, शब्द या अर्थ अर्थात् विश्व । सृष्टि के मूल में वाङ्मय **'त्रिकोण'** है । वाङ् मय त्रिकोण के मध्य में परा-वाक् रूपी **'विन्दु'** है । वाङ्-मय त्रिकोण की तीन रेखायें पश्यन्ती - मध्यमा वैखरी तीनों वाक्-स्वरूपा हैं । परा-वाक्-रूपो विन्दु में विश्व गर्भस्थ है, वामा में प्रसूत है, ज्येष्ठा में विकसित है और वैखरी में पूर्ण विग्रह-धारी है । वाङ्मय त्रिकोण की तीन रेखायें पन्द्रह (१५) स्वर वर्णों द्वारा रचित हैं । वाम रेखा पहले पाँच स्वरों 'अ आ इ ई उ' से रचित है। ऊर्ध्व-रेखा अगले पाँच स्वरों 'ऊ ए ऐ ओ ओ' और दक्षिण-रेखा शेष पाँच स्वरों 'ऋ ॠ लृ लु अं से रचित है । त्रिकोण का विन्दु आसन स्वरूप 'अ : ' सोलहवाँ स्वर वर्ण है। इस आसन में शिवशक्ति, परमेश्वर-परमेश्वरी नित्य आसीन हैं। -

शिव-शक्ति द्वारा आसीन वैन्दव- चक्र से बाह्य सृष्टि का स्फुरण होता है। नौ त्रिकोणात्मक नव-योनि-चक्र का उद्भव होता है । नव-योनि के नौ अवयव हैं- १ धर्म, २ अधर्म, ३ आत्मा, ४ अन्तरात्मा, ५ परमात्मा, ६ ज्ञानात्मा, ७ प्रमात्मा-जीव, ८ प्रमेय और ६ प्रमा। यह नव-योनि-चक्र भीतर और बाहर चिदानन्द-मय, पूर्णाहन्ता स्फुरणात्मक आनन्द-मय है। यह देश, काल और आकार द्वारा अपरिच्छिन्न है । वैन्दव-चक्र परा वाङ्मय अभ्यन्तर है। नव योनि चक्र (बाह्य सृष्टि) वैखरीवाङ्मय है।

भावनोपनिषद् के अनुसार आत्म-ध्यान के समय साधक निज-देह को ही 'श्री चक्र' रूप में भावना करे। इस भावना का विशेष प्रयोजन यही है कि 'देह' अथवा 'विश्व' आत्मा से अभिन्न है, इसकी अनुभूति हो । भावनावादी कहते हैं कि चन्द्रमा की सुप्रसिद्ध पञ्चदश कलाएँ शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से पूर्णिमा तक की पन्द्रह तिथियों की द्योतक हैं। इन सबको कामेश्वरी से अभिन्न समझना होता है । 'सदाख्य' नाम से प्रसिद्ध षोडशी कला से उसे अभिन्न अनुभव करना होता है । अर्थात्

कालचक्र में जो कुछ पतित होता है, 'श्री चक्र' में वह नित्य विद्यमान, नित्य वर्ग के साथ अभिन्न है ।

'तिथि- चक्र' अथवा 'काल-चक्र' निरन्तर आवर्तन करता है । 'श्री चक्र' इसके अभ्यन्तर में नित्य विद्यमान है। यह सकल विषय तान्त्रिक शक्ति-योग के अन्तर्गत है। **इस प्रसङ्ग में अधिक लिखना 'बौना होकर चन्द्रमा को स्पर्श करना है ।'**

श्रीमात्रे नमः

आदि शङ्कर वैदिक विद्या संस्थान
दूरभाष: 9044016661